

वैदिक पंचांग और मुहूर्त शास्त्र: एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

Parhlad Singh Ahluwalia, Dr. Bhim Rao Ambedkar Law University, Jaipur, Rajasthan

सार (Abstract)

समय का मापन और उसका सामाजिक-धार्मिक उपयोग किसी भी सभ्यता की बौद्धिक परिपक्वता का सूचक है। भारतीय परम्परा में यह उपयोग पंचांग और मुहूर्त-व्यवस्था के रूप में सहस्राब्दियों से जीवित है। प्रस्तुत शोध-पत्र वैदिक पंचांग के पाँचों अंगों तथा अहोरात्र के तीस मुहूर्तों (पन्द्रह दिवा और पन्द्रह रात्रि) का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। अध्ययन की पद्धति PRISMA-ScR की पारदर्शिता-भावना पर आधारित एक स्कोपिंग समीक्षा है, जिसमें प्रदत्त सन्दर्भ-संग्रह की जाँच तथा शास्त्रीय एवं आधुनिक वैज्ञानिक स्रोतों का उद्देश्यपूर्ण चयन सम्मिलित है। लेखक ने खगोलीय गणना द्वारा मौलिक तुलनात्मक आँकड़े भी तैयार किए हैं। वर्ष 2024 में 372 तिथियों की अवधि 20 घण्टे 12 मिनट से 26 घण्टे 46 मिनट के बीच पाई गई; दिल्ली में 20 जून को दिवा-मुहूर्त लगभग 56.2 मिनट तथा 21 दिसम्बर को लगभग 41.6 मिनट आँका गया, जबकि रूढ़ मान 48 मिनट का है। निष्कर्षतः पंचांग का खगोलीय-गणितीय आधार सुदृढ़ और सत्यापनीय है, जबकि मुहूर्त के शुभाशुभ फलों के लिए प्रत्यक्ष प्रायोगिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं; तथापि कालचेतना, अनुशासन, अनुष्ठानजन्य मनोवैज्ञानिक लाभ और सर्केडियन-सामंजस्य के स्तर पर इस व्यवस्था के कुछ परीक्षण-योग्य पक्ष विद्यमान हैं।

कूटशब्द (Keywords): वैदिक पंचांग; मुहूर्त; तिथि; काल-दर्शन; कालचिकित्सा (क्रोनोबायोलॉजी); PRISMA-ScR; ज्योतिष-विज्ञान विमर्श

1. प्रस्तावना

मनुष्य ने जब पहली बार सूर्य के उदय-अस्त, चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं और ऋतुओं की पुनरावृत्ति पर ध्यान दिया, तभी काल को गिनने की आवश्यकता जन्मी। कैलेण्डर केवल तिथियों की सूची नहीं होता; वह किसी समाज की सामूहिक लय, उसके कार्य-विश्राम चक्र और उसके पर्व-उत्सवों का संगठित रूप है [1]। कैलेण्डरीय गणनाओं के आधुनिक अध्ययन में हिन्दू पंचांग को चान्द्र-सौर प्रणालियों के उन्नत उदाहरणों में गिना जाता है, क्योंकि उसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों का एक साथ समायोजन करना पड़ता है [2]।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में ज्योतिष को वेद का एक अंग, अर्थात् वेदाङ्ग, माना गया। वेदाङ्ग-ज्योतिष का एक प्रसिद्ध श्लोक इस प्रतिष्ठा को इस प्रकार व्यक्त करता है:

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥ [3]

अर्थात् जैसे मयूर के सिर पर शिखा और सर्पों के मस्तक पर मणि शोभित होती है, वैसे ही वेदाङ्ग-शास्त्रों में ज्योतिष शीर्ष स्थान पर स्थित है। इस कथन का ऐतिहासिक प्रयोजन स्पष्ट है। वैदिक यज्ञ समय-विशेष पर ही सम्पन्न होने थे; अतः सही समय का निर्धारण धार्मिक कर्तव्य था, और इसी आवश्यकता से खगोल-गणना का विकास हुआ [4,5]।

पंचांग उसी गणितीय परम्परा की व्यावहारिक परिणति है। 'पंच-अंग' अर्थात् तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण का समवेत अभिलेख। इसी पंचांग के भीतर 'मुहूर्त' की धारणा आती है, जो अहोरात्र (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक का एक पूर्ण दिन-रात) का तीसवाँ भाग है और जिसे प्रचलित मान से 48 मिनट अथवा दो घटी माना जाता है। लोकव्यवहार में विवाह, गृहप्रवेश, यात्रा, व्यापारारम्भ और अनेक संस्कारों के लिए 'शुभ मुहूर्त' की खोज आज भी होती है। संस्कार और संस्कृति के सम्बन्ध को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने वाले हिन्दी अध्ययन यह संकेत देते हैं कि ऐसे अनुष्ठान केवल व्यक्तिगत विश्वास नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निरन्तरता के वाहक भी हैं [6-8]।

यहाँ से शोध-समस्या उभरती है। इस विषय पर लिखा गया साहित्य प्रायः दो ध्रुवों में बँटा दिखता है। एक ओर श्रद्धामूलक व्याख्याएँ हैं, जो शास्त्रीय कथन को स्वतःप्रमाण मान लेती हैं; दूसरी ओर खण्डनात्मक आलोचनाएँ हैं, जो सम्पूर्ण ज्योतिष को एक ही तराजू पर रखकर अवैज्ञानिक घोषित कर देती हैं [9,10]। दोनों में एक चूक समान है: वे पंचांग (गणितीय-खगोलीय ढाँचा) और मुहूर्त-फल (शुभाशुभ व्याख्या) को अलग-अलग स्तर के दावे मानकर नहीं परखतीं। पंचांग के दावे आकाश की प्रेक्षणीय स्थितियों के बारे में हैं और उन्हें गणना से जाँचा जा सकता है। मुहूर्त-फल के दावे मानवीय कर्म के परिणामों के बारे में हैं और उन्हें अवलोकनात्मक अथवा प्रायोगिक अनुसन्धान की कसौटी पर कसना होगा।

प्रस्तुत शोध-पत्र इसी भेद को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ता है। इसकी तीन विशेषताएँ हैं। पहली, शास्त्रीय पाठ को उसके मूल संस्कृत रूप में उद्धृत कर उसकी सीमाओं सहित प्रस्तुत किया गया है। दूसरी, सन्दर्भ-संग्रह की PRISMA-ScR-प्रेरित स्क्रीनिंग से अध्ययन की पारदर्शिता सुनिश्चित की गई है [11,12]। तीसरी, वर्ष 2024 के लिए खगोलीय गणना द्वारा मौलिक आँकड़े बनाए गए हैं, ताकि 'तीस मुहूर्त, प्रत्येक 48 मिनट' जैसे प्रचलित कथन की वास्तविकता को संख्याओं में देखा जा सके।

2. शोध-उद्देश्य, प्रश्न एवं परिकल्पनाएँ

उद्देश्य (i) वैदिक पंचांग के पाँचों अंगों की शास्त्रीय परिभाषा और आधुनिक खगोलीय समतुल्यता स्पष्ट करना; (ii) अहोरात्र के तीस मुहूर्तों की संरचना, नामावली और पारम्परिक शुभाशुभ वर्गीकरण का विश्लेषण करना; (iii) इन अवधारणाओं की दार्शनिक पृष्ठभूमि को काल, ऋतु, कर्म और दैव के सन्दर्भ में समझना; (iv) उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के आलोक में इनके परीक्षण-योग्य पक्षों को पहचानना; (v) अन्य सभ्यताओं की कालविभाजन-पद्धतियों से तुलना करना।

शोध-प्रश्न

- RQ1: पंचांग के अंग खगोलीय दृष्टि से कितने निश्चित और कितने परिवर्तनशील हैं?
- RQ2: 'प्रत्येक मुहूर्त 48 मिनट का' होने का कथन अक्षांश और ऋतु के साथ कितना स्थिर रहता है?
- RQ3: मुहूर्त के शुभाशुभ फलों के पक्ष-विपक्ष में किस प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हैं?
- RQ4: दर्शन और विज्ञान के संवाद से इस विषय में कौन-से परीक्षण-योग्य शोध-क्षेत्र निकलते हैं?

कार्यकारी परिकल्पनाएँ H1: पंचांग की गणनाएँ आधुनिक खगोलीय गणनाओं से सत्यापित की जा सकती हैं। H2: निश्चित 48 मिनट का मुहूर्त एक आदर्शीकृत औसत है; वास्तविक दिवा-मुहूर्त (दिनमान का पन्द्रहवाँ भाग) अक्षांश-ऋतु अनुसार बदलता है। H3: मुहूर्त के शुभाशुभ फल के लिए कारणात्मक प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिलते, परन्तु व्यवहार-स्तर के कुछ प्रभाव मनोवैज्ञानिक और कालजैविक कारकों से समझे जा सकते हैं।

3. शोध-पद्धति

3.1 अध्ययन-अभिकल्प

यह अध्ययन स्कोपिंग समीक्षा है, जिसका ढाँचा PRISMA-ScR की जाँच-सूची से प्रेरित है [11,12]। स्कोपिंग समीक्षा उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है जहाँ साहित्य विषमांगी हो और एकल प्रश्न पर मात्रात्मक संश्लेषण सम्भव न हो। प्रस्तुत विषय में शास्त्रीय ग्रन्थ, ऐतिहासिक अध्ययन, खगोलीय गणित, कालजैविकी, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र एक साथ आते हैं; इसलिए यही अभिकल्प उपयुक्त ठहरता है।

3.2 स्रोत-धाराएँ

अध्ययन में दो स्रोत-धाराएँ रखी गईं।

धारा क (प्रदत्त सन्दर्भ-संग्रह की स्क्रीनिंग)। लेखक द्वारा उपलब्ध कराए गए संग्रह में 117 अभिलेख थे। इन पर क्रमशः तीन चरण लगाए गए: अभिलेख-पूर्णता की जाँच, प्रकाशन-वर्ष का मानदण्ड (2024 या उससे पूर्व), और विषय-प्रासंगिकता।

धारा ख (उद्देश्यपूर्ण चयन)। शास्त्रीय प्राथमिक स्रोत (ऋग्वेद, अथर्ववेद, वेदाङ्ग-ज्योतिष, सूर्यसिद्धान्त, बृहत्संहिता, पञ्चसिद्धान्तिका, मुहूर्तचिन्तामणि, अष्टाङ्गहृदय और भगवद्गीता के मान्य अनुवाद/संस्करण [3,13-20]) तथा खगोल-इतिहास, कालजैविकी, मनोविज्ञान और विज्ञान-दर्शन के प्रतिष्ठित द्वितीयक स्रोत चुने गए।

यहाँ यह स्पष्ट कहना आवश्यक है कि धारा ख कोई व्यापक डेटाबेस-खोज नहीं है। यह विषय-विशेषज्ञ चयन पर आधारित है; इसलिए इसे PRISMA की पूर्ण पद्धति का पालन नहीं, बल्कि उसकी पारदर्शिता-भावना का अनुसरण कहना उचित होगा। यह एक सुविचारित पद्धतिगत सीमा है, जिसका उल्लेख खण्ड 11 में पुनः किया गया है।

3.3 समावेशन एवं बहिष्करण मानदण्ड

समावेशन: (क) प्रकाशन-वर्ष 2024 या उससे पूर्व; (ख) विषय से प्रत्यक्ष अथवा सन्दर्भगत सम्बन्ध, जैसे काल, कैलेण्डर, खगोल, कालजैविकी, संस्कार-संस्कृति, शोध-नैतिकता या मौलिकता; (ग) पूर्ण ग्रन्थ-सूचना की उपलब्धता। **बहिष्करण:** (क) 2025 या उसके बाद के अभिलेख; (ख) अपूर्ण अभिलेख; (ग) विषय से असम्बद्ध अध्ययन।

3.4 धारा क के स्क्रीनिंग-परिणाम

प्रवाह इस प्रकार रहा (PRISMA-ScR प्रवाह का पाठ-रूप):

• **पहचान (Identification):** प्रदत्त संग्रह में कुल 117 अभिलेख।

- **पूर्णता-जाँच:** वर्ष और प्रकाशन-स्रोत की अपूर्ण सूचना वाले 2 अभिलेख हटाए गए; शेष 115।
- **स्क्रीनिंग (कालसीमा):** 2025 या 2026 के 97 अभिलेख बहिष्कृत (89 + 8); कालसीमा-योग्य 18 अभिलेख (वर्ष 2024 के 12 और वर्ष 2023 के 6)।
- **पात्रता (विषय-प्रासंगिकता):** 18 में से 8 अभिलेख सन्दर्भगत रूप से प्रासंगिक पाए गए और 10 को असम्बद्ध मानकर बाहर किया गया।
- **समावेशन (Included):** धारा क से 8 अभिलेख।

सम्मिलित 8 अभिलेख हैं: संस्कार-संस्कृति-भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन [6-8], शोध-नैतिकता [21], मौलिकता और साहित्यिक चोरी की पहचान-तकनीकें [22], गाँधीवादी मूल्य एवं नैतिक शिक्षा सम्बन्धी विमर्श [23,24] तथा पर्यावरण-संरक्षण में सामाजिक भूमिका का अध्ययन [25]। बहिष्कृत 10 अभिलेख हैं: उच्च शिक्षा में गुणवत्ता-मान्यता (NAAC) पर आठ अध्ययन [26-33], भारत-चीन सम्बन्धों पर एक अध्ययन [34] और अस्पताल-संक्रमण पर एक अध्ययन [35]; ये सभी विषय-क्षेत्र की दृष्टि से पंचांग-मुहूर्त प्रश्न से असम्बद्ध ठहरे। यह निर्णय शीर्षक और विषय-क्षेत्र के आधार पर लिया गया है।

धारा ख से लेखक ने अलग से शास्त्रीय और आधुनिक वैज्ञानिक स्रोत चुने, जिनकी संख्या सन्दर्भ-सूची के अन्त में दिखती है। अन्तिम संश्लेषण में दोनों धाराओं को मिलाया गया है।

3.5 मौलिक खगोलीय गणना की विधि

मुहूर्त-अवधि और तिथि-अवधि सम्बन्धी आँकड़े लेखक ने स्वयं निकाले हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त की परिभाषा में सूर्य के केन्द्र के क्षितिज पर आने की स्थिति ली गई और वायुमण्डलीय अपवर्तन का मानक सुधार (लगभग 34 कला-मिनट) लगाया गया [36]। खगोलीय स्थितियों के लिए PyEphem पुस्तकालय का उपयोग हुआ, जिसकी अन्तर्निहित गणनाएँ मानक खगोलीय एल्गोरिदमों पर आधारित हैं [37,38]। पाँच स्थान लिए गए: चेन्नई (13.08° उ.), वाराणसी (25.32° उ.), दिल्ली (28.61° उ.), श्रीनगर (34.08° उ.) और ट्रोम्सो (69.65° उ.)। ट्रोम्सो को जान-बूझकर इसलिए जोड़ा गया कि सूर्योदय-आधारित मुहूर्त-व्यवस्था की सीमा-स्थिति दिखे। तिथि-अवधि के लिए 1 जनवरी से 31 दिसम्बर 2024 के बीच आरम्भ होने वाली सभी तिथियाँ गिनी गईं; चन्द्र-सूर्य के भोगांश-अन्तर के प्रत्येक 12° के पार होने का समय द्विविभाजन-विधि से निकाला गया। सभी परिणाम अनुमानित हैं और सीमा-समय में कुछ मिनट की त्रुटि सम्भव है।

3.6 नैतिकता और मौलिकता

शोध-नैतिकता सम्बन्धी हिन्दी-अंग्रेजी साहित्य की मूल बातें, अर्थात् स्रोत की ईमानदार स्वीकृति, सीमाओं का स्पष्ट उल्लेख और दावे को साक्ष्य की सीमा तक ही रखना, इस अध्ययन में अपनाई गई हैं [21]। मौलिकता सुनिश्चित करने के लिए पाठ को स्वतन्त्र रूप से लिखा गया है, शास्त्रीय उद्धरण केवल संस्कृत मूलपाठ के रूप में चिह्नित और सन्दर्भित हैं, और उद्धरण-पहचान तथा समानता-जाँच के उपलब्ध साधनों एवं तकनीकों के सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा गया है [22]। फिर भी प्रकाशन से पूर्व मान्य सॉफ्टवेयर से औपचारिक समानता-जाँच करना उचित रहेगा।

4. वैदिक पंचांग का शास्त्रीय एवं खगोलीय ढाँचा

4.1 काल-मापन की मूल इकाइयाँ

भारतीय काल-गणना सूक्ष्म से स्थूल की ओर एक व्यवस्थित क्रम रखती है। सूर्यसिद्धान्त में एक नाक्षत्र अहोरात्र को इस प्रकार बाँटा गया है:

षड्भिः प्राणैर्विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ।

नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ॥ [15]

इसके अनुसार छह प्राण (प्रत्येक लगभग 4 सेकण्ड) से एक विनाडी (लगभग 24 सेकण्ड), साठ विनाडी से एक नाडिका (लगभग 24 मिनट) और साठ नाडिका से एक अहोरात्र बनता है। दो नाडिका का एक मुहूर्त होता है; अतः तीस मुहूर्त एक अहोरात्र में समाते हैं और प्रत्येक की औसत अवधि 48 मिनट बैठती है। यह अंकगणित अपने आप में निर्दोष है। प्रश्न यह है कि इसमें 'अहोरात्र' की परिभाषा क्या ली जाए, और यही प्रश्न आगे सारणी 2 के विश्लेषण में केन्द्रीय बनेगा।

4.2 पंचांग के पाँच अंग

परम्परा में पंचांग की एक लोकप्रसिद्ध परिभाषा इस प्रकार दोहराई जाती है:

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च ।

एतेषां यत्र विज्ञानं पञ्चाङ्गं तन्निगद्यते ॥

(यह पारम्परिक उक्ति ज्योतिष-शिक्षण में व्यापक रूप से उद्धृत होती है; मैंने इसके लिए किसी एक संस्करण-विशेष का दावा नहीं किया है।) खगोलीय दृष्टि से पाँचों अंगों को निम्नानुसार समझा जा सकता है [2,39,40]।

तिथि। चन्द्रमा और सूर्य के भोगांशों के अन्तर में प्रत्येक 12° की वृद्धि एक तिथि है। एक पूर्ण चक्र 360° का है, इसलिए एक चान्द्रमास में तीस तिथियाँ होती हैं। संयुति-मास (अमावस्या से अमावस्या) का माध्य मान लगभग 29.5306 दिन है, अतः माध्य तिथि लगभग 23 घण्टे 37 मिनट की बैठती है। परन्तु चन्द्रमा की कक्षा दीर्घवृत्तीय है और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर असमान गति से चलती प्रतीत होती है; इसलिए वास्तविक तिथियाँ छोटी-बड़ी होती रहती हैं।

वार। सात दिनों का चक्र, जो सूर्योदय से बदलता है। इसकी निरन्तरता भारतीय परम्परा में अटूट मानी जाती है।

नक्षत्र। चन्द्रमा के पथ को 27 भागों में बाँटने पर प्रत्येक भाग $13^\circ 20'$ का होता है। यह चन्द्रमा की लगभग 27.32 दिन की नाक्षत्र परिक्रमा से जुड़ा है।

योग। सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों के योग में प्रत्येक $13^\circ 20'$ की वृद्धि एक योग है; इस प्रकार 27 योग होते हैं।

करण। तिथि का अर्धभाग करण है। एक चान्द्रमास में 60 करण आते हैं। इनमें सात चर और चार स्थिर करण गिने जाते हैं।

इन पाँचों में पहले चार प्रेक्षणीय आकाशीय राशियों पर आधारित हैं, इसलिए वे गणितीय सत्यापन के लिए खुले हैं। इसी कारण पंचांग को खगोल-सारणी के रूप में देखना न केवल सम्भव, बल्कि स्वाभाविक भी है।

4.3 गणितीय परम्परा और आधुनिक पंचांग-सुधार

पंचांग की गणना का सैद्धान्तिक आधार सिद्धान्त-ग्रन्थों में है, जिनमें सूर्यसिद्धान्त सर्वाधिक प्रभावशाली रहा। वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका में पाँच तत्कालीन सिद्धान्तों का संकलन मिलता है [17], और सूर्यसिद्धान्त का प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित हुआ [15]। भारतीय गणित और खगोल के आधुनिक इतिहासकार इन परम्पराओं में त्रिकोणमितीय तथा संख्यात्मक विधियों की परिष्कृतता को रेखांकित करते हैं [41,42]।

पंचांग में एक व्यावहारिक समस्या यह रही कि विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग गणना-पद्धतियाँ प्रचलित थीं, जिससे एक ही पर्व अलग तिथियों पर पड़ने लगा। स्वतन्त्र भारत में 1955 की कैलेण्डर सुधार समिति ने इस विषय का व्यापक सर्वेक्षण किया और 'राष्ट्रीय पंचांग' की संस्तुति के साथ दृक्-गणित आधारित सुधार के सुझाव दिए [43]। बाद के विद्वानों ने भारतीय कैलेण्डर-व्यवस्था का समग्र विवरण देते हुए भी यह रेखांकित किया कि क्षेत्रीय प्रथाएँ पूर्णतः एकरूप नहीं हो सकीं [39]।

5. मुहूर्त-व्यवस्था: तीस मुहूर्तों का संरचनात्मक विश्लेषण

5.1 अहोरात्र का विभाजन

मुहूर्त-व्यवस्था में एक अहोरात्र को तीस भागों में बाँटा जाता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक का दिवा-भाग पन्द्रह मुहूर्तों का और सूर्यास्त से अगले सूर्योदय तक का रात्रि-भाग पन्द्रह मुहूर्तों का माना गया है। प्रचलित मान में प्रत्येक मुहूर्त दो घटी, अर्थात् 48 मिनट का होता है। मुहूर्त-विषयक प्रमुख संकलन ग्रन्थों में मुहूर्तचिन्तामणि का स्थान विशिष्ट है, जिसकी परम्परा में कार्य-विशेष के लिए काल-शुद्धि के नियम व्यवस्थित हुए [18,44]। ज्योतिष-साहित्य के इतिहासकार यह भी दिखाते हैं कि मुहूर्त-सम्बन्धी विचार कई चरणों में विकसित हुआ और विभिन्न ग्रन्थों में नामावली तथा फल-निर्देश में पाठभेद मिलते हैं [4]। इसलिए नीचे दी गई सूची को एक प्रचलित परम्परा का प्रतिनिधि पाठ माना जाए, सार्वभौमिक पाठ नहीं।

5.2 मुहूर्त-सूची

सारणी 1 में तीस मुहूर्तों के नाम, पारम्परिक फल-वर्गीकरण और स्थिर 48 मिनट की योजना में उनके आरम्भ-समय (सूर्योदय या सूर्यास्त से बीता हुआ समय) दिए गए हैं। यह योजना केवल संदर्भ-सुविधा के लिए है; वास्तविक ऋतु-स्थिति में आरम्भ-समय बदलते हैं, जैसा आगे विश्लेषित है।

सारणी 1: दिवा एवं रात्रि के तीस मुहूर्त, पारम्परिक फल और स्थिर-योजना में आरम्भ-समय

क्र.	भाग	मुहूर्त	पारम्परिक फल	विशेष टिप्पणी	आरम्भ (स्थिर 48 मि.)
1	दिवा	रुद्र	अशुभ	—	0:00 (सूर्योदय के बाद)
2	दिवा	आहि / सर्प	अशुभ	—	0:48 (सूर्योदय के बाद)
3	दिवा	मित्र	शुभ	मित्रता, समझौते	1:36 (सूर्योदय के बाद)
4	दिवा	पितृ	अशुभ	पितृकार्य/तर्पण हेतु ठीक; सामान्य कार्य वर्जित	2:24 (सूर्योदय के बाद)
5	दिवा	वसु	शुभ	धन-समृद्धि	3:12 (सूर्योदय के बाद)
6	दिवा	वाराह	शुभ	निर्माण, भूमि-सम्बन्धी कार्य	4:00 (सूर्योदय के बाद)

7	दिवा	विश्वेदेव	शुभ	धार्मिक-सात्विक कार्य	4:48 (सूर्योदय के बाद)
8	दिवा	विधि / अभिजित्	अति शुभ	दोषमुक्त; कुछ वारों में विशेष वर्जना	5:36 (सूर्योदय के बाद)
9	दिवा	सुतमुखी / सतमुखी	शुभ	—	6:24 (सूर्योदय के बाद)
10	दिवा	पुरुहूत	अशुभ	—	7:12 (सूर्योदय के बाद)
11	दिवा	वाहिनी / विन्द	अशुभ	—	8:00 (सूर्योदय के बाद)
12	दिवा	नक्तनकर	अशुभ	—	8:48 (सूर्योदय के बाद)
13	दिवा	वरुण	शुभ	जल, यात्रा, शान्त कार्य	9:36 (सूर्योदय के बाद)
14	दिवा	अर्यमन्	शुभ	नेतृत्व, मान-सम्मान	10:24 (सूर्योदय के बाद)
15	दिवा	भग	अशुभ	—	11:12 (सूर्योदय के बाद)
16	रात्रि	गिरीश	अशुभ	—	0:00 (सूर्यास्त के बाद)
17	रात्रि	अजपाद	अशुभ	—	0:48 (सूर्यास्त के बाद)
18	रात्रि	अहिर्बुध्न्य	शुभ	—	1:36 (सूर्यास्त के बाद)
19	रात्रि	पुष्य	शुभ	पोषण, वृद्धि, स्थिरता	2:24 (सूर्यास्त के बाद)
20	रात्रि	अश्विनी	शुभ	तीव्र, गतिशील कार्य	3:12 (सूर्यास्त के बाद)
21	रात्रि	यम	अशुभ	कठोरता/अनुशासन; शुभ कार्य वर्जित	4:00 (सूर्यास्त के बाद)
22	रात्रि	अग्नि	शुभ	यज्ञ, होम	4:48 (सूर्यास्त के बाद)
23	रात्रि	विधातृ	शुभ	व्यवस्था, सृजन	5:36 (सूर्यास्त के बाद)
24	रात्रि	काण्ड	शुभ	—	6:24 (सूर्यास्त के बाद)
25	रात्रि	अदिति	शुभ	स्वतन्त्रता, विस्तार	7:12 (सूर्यास्त के बाद)
26	रात्रि	जीव / अमृत	अति शुभ	स्वास्थ्य, दीर्घायु, मंगल कार्य	8:00 (सूर्यास्त के बाद)
27	रात्रि	विष्णु	शुभ	धार्मिक अनुष्ठान	8:48 (सूर्यास्त के बाद)
28	रात्रि	द्युमद्द्युति	शुभ	प्रकाश, ऊर्जा	9:36 (सूर्यास्त के बाद)
29	रात्रि	ब्रह्म	अति शुभ	ब्राह्म मुहूर्त: ध्यान, साधना, जप	10:24 (सूर्यास्त के बाद)
30	रात्रि	समुद्र	शुभ	शान्ति, विशालता	11:12 (सूर्यास्त के बाद)

टिप्पणी: नाम, क्रम और फल-वर्ग एक प्रचलित परम्परा पर आधारित हैं; ग्रन्थ-भेद से पाठभेद सम्भव हैं। आरम्भ-समय स्थिर 48 मिनट की योजना में हैं। [4,18]

5.3 वर्गीकरण का विश्लेषण

सारणी 1 के अनुसार दिवा के पन्द्रह मुहूर्तों में अति शुभ 1, शुभ 7 तथा अशुभ 7 पारम्परिक रूप से गिने गए हैं; रात्रि के पन्द्रह मुहूर्तों में अति शुभ 2, शुभ 10 तथा अशुभ 3 हैं। इस प्रकार तीस में से कुल 3 अति शुभ, 17 शुभ और 10 अशुभ हैं। यह वितरण दो बातें

दिखाता है। पहली, परम्परा में 'अशुभ' मुहूर्त भी लगभग तैंतीस प्रतिशत हैं, अर्थात् व्यवस्था सर्वत्र शुभ का आश्वासन नहीं देती, बल्कि चयन की आवश्यकता पर बल देती है। दूसरी, रात्रि में अनुपात अधिक शुभ है, जो प्रातः-पूर्व के साधना-काल को विशेष महत्त्व देने की परम्परा से संगत प्रतीत होता है।

नामों पर ध्यान दें तो अनेक मुहूर्त वैदिक देवों या अधिष्ठाताओं से जुड़े हैं: रुद्र, मित्र, वसु, विश्वेदेव, वरुण, अर्यमा, अग्नि, विष्णु और ब्रह्मा। इसका अर्थ यह है कि मुहूर्त को केवल घड़ी का खण्ड नहीं, बल्कि गुणात्मक काल-खण्ड माना गया, जिसमें देवतत्त्व की प्रधानता का भाव निहित है। यह गुणात्मक काल की धारणा आधुनिक समय-प्रबन्धन की एकरूप, अर्थात् रिक्त, घड़ी-आधारित समय की धारणा से भिन्न है।

5.4 दो विशेष मुहूर्त: अभिजित् और ब्राह्म

दिवा का आठवाँ मुहूर्त, जिसे विधि अथवा अभिजित् नाम से भी जाना गया, परम्परा में लगभग दोषमुक्त माना जाता है। इसका स्थान दिन के मध्य में पड़ता है, इसलिए यह स्वाभाविक रूप से मध्याह्न से जुड़ गया। रात्रि का चौदहवाँ मुहूर्त ब्रह्म मुहूर्त है। इसके विषय में आयुर्वेद की स्वस्थवृत्त-परम्परा का यह कथन प्रसिद्ध है:

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।

शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥ [19]

यहाँ ब्राह्म मुहूर्त में जागना स्वस्थ व्यक्ति के लिए आयु-रक्षा के उपाय के रूप में कहा गया है। स्थिर 48 मिनट की योजना में यह मुहूर्त सूर्योदय से लगभग 96 मिनट पहले आरम्भ होकर 48 मिनट पहले समाप्त होता है। ध्यान दें कि यहाँ शास्त्र का कथन स्वास्थ्य-चर्या का है, फलित-ज्योतिष का नहीं। इस भेद को पहचानना आगे के विश्लेषण में उपयोगी सिद्ध होगा।

6. सम्बन्धित शोध-समीक्षा: परिणाम, निष्कर्ष और विभिन्न दृष्टिकोण

इस खण्ड में विषय से जुड़े पूर्व शोधों को पाँच दृष्टिकोणों में रखा गया है, और प्रत्येक में उनके परिणाम तथा उनकी सीमाएँ दर्ज की गई हैं। इस वर्गीकरण का उद्देश्य यह दिखाना है कि 'पंचांग-मुहूर्त' एक ही प्रश्न नहीं, बल्कि कई प्रश्नों का समुच्चय है।

6.1 ऐतिहासिक-खगोलीय दृष्टिकोण

डेविड पिंग्री का ज्योतिष-साहित्य पर विस्तृत सर्वेक्षण भारतीय ज्योतिःशास्त्र को गणित-खगोल और फलित, दोनों धाराओं में पहचानता है और दिखाता है कि भारतीय ज्योतिष पर यूनानी-बेबिलोनी प्रभाव, तथा भारतीय योगदान का विश्लेषण परस्पर जुड़ा है [4]। इसका परिणाम यह है कि ज्योतिष को 'शुद्ध स्वदेशी' या 'पूर्णतः आयातित' कहने वाले दोनों सरलीकरण कमजोर पड़ते हैं। भारतीय खगोल-इतिहास के सुसंगत स्रोत-संग्रह भी यही दिखाते हैं कि वैदिक काल से सिद्धान्तकाल तक प्रेक्षण और गणना की निरन्तर परम्परा रही [5,45]। सीमा यह है कि इन अध्ययनों का केन्द्र पाठ-इतिहास है, मुहूर्त-फल का प्रायोगिक परीक्षण नहीं।

6.2 कैलेण्डर-गणित का दृष्टिकोण

सेवेल और दीक्षित का क्लासिक अध्ययन भारतीय तिथि-गणना की विधियाँ और सारणियाँ व्यवस्थित करता है [40]; चटर्जी की कृति उसी विषय का आधुनिक भारतीय सन्दर्भ प्रस्तुत करती है [39]; और रेइंगोल्ड-डर्शोविट्ज़ के कैलेण्डर-अल्गोरिदम हिन्दू

चान्द्र-सौर पंचांग को कम्प्यूटेशनल रूप में लिखने योग्य दिखाते हैं [2]। इन सबका संयुक्त परिणाम यह है कि तिथि, नक्षत्र, योग आदि की गणना पूर्णतः एल्गोरिथ्मिक और सत्यापनीय है। यह पंचांग के पक्ष में सबसे मजबूत वैज्ञानिक तर्क है। सीमा यह है कि यही निष्कर्ष मुहूर्त-फल तक विस्तार नहीं पाता।

6.3 वैज्ञानिक परीक्षण का दृष्टिकोण

फलित-ज्योतिष के दावों पर सबसे चर्चित प्रयोगात्मक परीक्षण शॉन कार्लसन का 1985 का दोहरा-अन्ध परीक्षण है। इसमें प्रसिद्ध ज्योतिषियों से जन्म-कुण्डली और व्यक्तित्व-प्रोफाइल का मिलान कराया गया, और परिणाम संयोगाधारित अपेक्षा के अनुरूप, अर्थात् लगभग एक-तिहाई सही उत्तर के स्तर पर रहे [46]। डीन और केली ने 'समय-जुड़वाँ' (एक ही समय के आसपास जन्मे लोग) सहित बड़े पैमाने के आँकड़ों की समीक्षा की और चेतना तथा मनोगुणों में ज्योतिषीय पूर्वानुमान का समर्थन नहीं पाया [47]। 1975 में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के एक वक्तव्य ने भी ज्योतिष की भविष्यवाणियों का वैज्ञानिक आधार न होने की बात कही [9]। विज्ञान-दर्शन में थागार्ड ने ज्योतिष को छद्म-विज्ञान इसलिए माना कि वह दीर्घकाल से अपरिवर्तित रहा और असफलताओं की व्याख्या नहीं कर सका [10]; यह तर्क पॉपर के मिथ्याकरणीयता-सिद्धान्त की परम्परा से जुड़ा है [48]। यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद्धतिगत सावधानी है: ये परीक्षण मुख्यतः जन्म-कुण्डली-आधारित व्यक्तित्व और भविष्यकथन पर हुए हैं। 'मुहूर्त' के विशिष्ट दावे, जैसे अमुक मुहूर्त में आरम्भ किया गया कार्य अधिक सफल होगा, पर नियन्त्रित, बड़े नमूने वाले परीक्षण साहित्य में लगभग अनुपस्थित हैं। अतः यह कहना सही होगा कि मुहूर्त-फल को सिद्ध करने वाला प्रमाण नहीं है, पर उसे निर्णायक रूप से अमान्य ठहराने वाला समर्पित प्रयोग भी बहुत कम हुआ है। साक्ष्य के अभाव और अभाव के साक्ष्य में भेद करना आवश्यक है।

6.4 कालजैविकी और चन्द्र-प्रभाव का दृष्टिकोण

चन्द्र-चक्र का मानव व्यवहार पर प्रभाव एक अलग शोध-शाखा है। रॉटन और केली ने 37 अध्ययनों के मेटा-विश्लेषण में पूर्णिमा से जुड़े असामान्य व्यवहार के लोकविश्वास का विश्वसनीय समर्थन नहीं पाया [49]; केली, रॉटन और कल्वर की समीक्षा भी इसी दिशा में रही [50]। दूसरी ओर काजोशें और सहयोगियों ने प्रयोगशाला में नियन्त्रित स्थिति में 33 प्रतिभागियों पर पाया कि पूर्णिमा के आसपास गहरी नींद की डेल्टा-सक्रियता घटी, सोने में लगने वाला समय लगभग पाँच मिनट बढ़ा और कुल नींद लगभग बीस मिनट घटी [51]। लेकिन कोर्डी, श्लार्ब और रैश ने बड़े पूर्व-संग्रहित आँकड़ों के पुनर्विश्लेषण में ऐसे चन्द्र-प्रभाव नहीं पाए और 'फाइल-ड्रावर' पक्षपात की ओर ध्यान दिलाया [52]। यह मिश्रित साक्ष्य बताता है कि चन्द्र-चरणों का कोई अत्यन्त सूक्ष्म प्रभाव सम्भव है, पर वह अभी विवादित है। फोस्टर और रोएनेबर्ग ने मानव-प्रतिक्रियाओं की भू-भौतिकीय दैनिक, वार्षिक और चान्द्र लय की व्यापक समीक्षा करते हुए पाया कि प्रकाश-अन्धकार का दैनिक चक्र सबसे सुदृढ़ कारक है, जबकि चान्द्र प्रभाव अपेक्षाकृत दुर्बल और अस्पष्ट हैं [53]। समुद्री जीवों में ज्वारीय और चान्द्र लय अवश्य पक्की हैं [54], किन्तु मानव में उनका सीधा विस्तार स्वतः सिद्ध नहीं।

दैनिक लय के स्तर पर साक्ष्य अधिक ठोस हैं। मानव का आन्तरिक जैविक घड़ी-चक्र लगभग 24.2 घण्टे का पाया गया है, जो प्रकाश से प्रतिदिन समायोजित होता है [55]। रोएनेबर्ग और सहयोगियों ने दिखाया कि मानव की सर्केडियन घड़ी सूर्य-समय के साथ समस्वर होती है [56], और राइट आदि ने पाया कि प्राकृतिक प्रकाश-अन्धकार चक्र में कुछ दिन रहने से घड़ी का चरण पहले आ जाता है [57]। विटमान और अन्य के 'सामाजिक जेट-लैग' अध्ययन ने जैविक और सामाजिक समय के बेमेल को स्वास्थ्य-जोखिम से जोड़ा

[58]। पांडा की समीक्षा चयापचय की सर्केडियन संरचना पर प्रकाश डालती है [59], और फोस्टर निद्रा तथा सर्केडियन लय को स्वास्थ्य से जोड़ते हैं [60]। इनका सार यह है कि 'सूर्योदय-सापेक्ष दिनचर्या' का विज्ञान-सम्मत आधार है, जो ब्राह्म मुहूर्त जैसे स्वास्थ्य-निर्देशों के लिए प्रासंगिक है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि किसी विशिष्ट 48 मिनट की खिड़की का कोई जादुई महत्त्व सिद्ध हो गया।

6.5 मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण

मुहूर्त के प्रति आस्था का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। लैंगर के 'नियन्त्रण के भ्रम' ने दिखाया कि अनिश्चित स्थितियों में लोग अपने नियन्त्रण को बढ़ाकर आँकते हैं [61]; फोरर प्रभाव दर्शाता है कि लोग सामान्य कथनों को अपने लिए विशिष्ट मान लेते हैं [62]। स्किनर के 'कबूतर में अन्धविश्वास' प्रयोग ने दर्शाया कि आकस्मिक संयोग भी व्यवहार को पुष्ट कर सकता है [63]; वाइज़ ने अन्धविश्वास के मनोविज्ञान का समेकित अध्ययन किया [64]। परन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी है। दामिश और सहयोगियों के प्रयोगों में 'शुभंकर' के कारण कार्य-प्रदर्शन बेहतर पाया गया [65]; ब्रुक्स और अन्य ने पाया कि अनुष्ठान चिन्ता घटाकर प्रदर्शन सुधार सकते हैं [66]; नॉर्टन और जीनो ने अनुष्ठानों को हानि और अनिश्चितता से निपटने का साधन बताया [67]। निष्कर्ष यह है कि मुहूर्त-पालन का एक मापनीय प्रभाव सम्भव है, पर वह आकाशीय कारण से नहीं, बल्कि विश्वास, चिन्ता-न्यूनीकरण और व्यवहार-तैयारी की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से उत्पन्न होता है।

समाजशास्त्रीय स्तर पर संस्कार, भाषा और संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध पर हुए हिन्दी शोध संस्कारों को सांस्कृतिक पहचान और निरन्तरता के आधार के रूप में देखते हैं [6-8]। यदि इसी दृष्टि से मुहूर्त-परम्परा को देखें, तो यह सामूहिक समयबद्धता और अनुष्ठानिक एकत्रीकरण की सामाजिक संरचना का भाग भी है। इस पक्ष की सीमा यह है कि समाजशास्त्रीय उपयोगिता किसी दावे को खगोलीय सत्य नहीं बना देती।

6.6 समीक्षा का समेकित निष्कर्ष

उपर्युक्त पाँच दृष्टिकोणों से एक स्पष्ट पैटर्न बनता है। जहाँ दावा आकाशीय स्थितियों के बारे में है, साक्ष्य मजबूत है। जहाँ दावा दैनिक जैविक लय के बारे में है, साक्ष्य मध्यम से सुदृढ़ है। जहाँ दावा चान्द्र-प्रभाव के बारे में है, साक्ष्य मिश्रित है। जहाँ दावा विशिष्ट मुहूर्त-फल के बारे में है, प्रत्यक्ष साक्ष्य लगभग अनुपस्थित है, यद्यपि मनोवैज्ञानिक तन्त्र के रास्ते अप्रत्यक्ष प्रभाव सम्भव हैं। यही पैटर्न इस शोध-पत्र के आगे के विश्लेषण का ढाँचा बनाता है।

7. दार्शनिक विश्लेषण

7.1 कालः वैदिक अन्तर्दृष्टि

वैदिक चिन्तन में काल निर्जीव माप नहीं, एक सक्रिय सृष्टि-शक्ति है। ऋग्वेद का एक मन्त्र सूर्य-चन्द्र की व्यवस्था को सृष्टि के नियमित क्रम के रूप में देखता है:

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ [13]

अर्थात् धाता ने सूर्य और चन्द्रमा को वैसे ही रचा जैसे पूर्व कल्प में थे, साथ ही द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को भी। यहाँ 'यथापूर्वम्' शब्द आवर्तन की धारणा देता है; समय सीधी रेखा से अधिक चक्र की तरह दिखता है। अथर्ववेद का काल-सूक्त काल को ही अश्व के रूप में चित्रित करता है:

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ [14]

यह काल को सात रश्मियों वाले, सहस्र नेत्रों वाले, अजर अश्व के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसकी गति से समस्त भुवन चक्र की तरह घूमते हैं। इस प्रकार वैदिक दृष्टि में पंचांग उस महाकाल की लय को पढ़ने का एक मानवीय प्रयास है। ऋग्वेद के अन्य मन्त्रों में भी बारह अरों वाले चक्र का बिम्ब वर्ष-चक्र के लिए आता है, जो समय की आवर्ती संरचना की ओर संकेत करता है [13]।

7.2 ऋत और व्यवस्था की धारणा

ऋत की धारणा ब्रह्माण्डीय और नैतिक व्यवस्था के संयोजन को दर्शाती है। जब खगोलीय पिण्डों की गति नियमित है, तब उस नियमितता से तालमेल रखकर किया गया कर्म भी सुव्यवस्थित होगा, ऐसा तर्क परम्परा के भीतर स्वाभाविक है। यह तर्क मुहूर्त-विचार का दार्शनिक मूल है: कर्म को अलग-थलग न करके उसे ब्रह्माण्डीय लय के भीतर रखना। यहाँ इस तर्क की तार्किक सीमा भी देखनी चाहिए। ब्रह्माण्ड का नियमित होना एक बात है; यह मानना कि प्रत्येक काल-खण्ड के साथ किसी विशिष्ट मानवीय परिणाम का नियम जुड़ा है, दूसरी बात। पहली बात प्रेक्षण से सिद्ध है; दूसरी को अलग साक्ष्य चाहिए। दर्शन की भाषा में कहें तो 'ऋत' से 'फलनियम' तक की छलाँग स्वतः न्यायोचित नहीं है।

7.3 कर्म, पुरुषार्थ और दैवः गीता का सन्तुलन

मुहूर्त-विचार की सबसे बड़ी दार्शनिक आलोचना यह की जाती है कि वह भाग्यवाद को बढ़ावा देता है। किन्तु भारतीय दर्शन स्वयं इस प्रश्न पर बहुमुखी है। गीता कर्म की सिद्धि के पाँच कारण गिनाती है:

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।

विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ [20]

यहाँ अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव, ये पाँच कारण हैं। 'दैव' पाँचवाँ है, एकमात्र नहीं। अर्थात् कर्म की सफलता में परिस्थितियों का एक हिस्सा स्वीकार हुआ है, पर पुरुषार्थ का स्थान समाप्त नहीं हुआ। गीता का प्रसिद्ध कर्मयोग-सूत्र इसी सन्तुलन को पूरा करता है:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ [20]

इस प्रकाश में मुहूर्त का स्वस्थ अर्थ यह बनता है कि वह कर्म का विकल्प नहीं, कर्म की तैयारी का एक अनुष्ठानिक आयाम है। यदि कोई व्यक्ति मुहूर्त के भरोसे आवश्यक श्रम और तैयारी छोड़ दे, तो यह गीता के मन्तव्य से भी असंगत होगा। इसके विपरीत, यदि मुहूर्त का उपयोग मानसिक एकाग्रता, कार्य-आरम्भ के अनुशासन और सामूहिक समन्वय के लिए हो, तो उसे गीता के कर्मकेन्द्रित ढाँचे में स्थान मिल सकता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि भारतीय चिन्तन में नियतिवाद की एक प्रबल धारा, आजीवक परम्परा, भी

थी, जिसने पुरुषकार को गौण माना; आजीवकों का इतिहास बताता है कि नियति और पुरुषार्थ का वाद-विवाद भारतीय दर्शन का पुराना विषय रहा है [68]।

7.4 उत्तरायण का उदाहरण: खगोल और अध्यात्म का संगम

गीता में उत्तरायण-दक्षिणायन का प्रसंग यह दिखाता है कि परम्परा खगोलीय कालखण्डों को आध्यात्मिक अर्थ से जोड़ती है:

अग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ [20]

उत्तरायण सूर्य की उत्तर दिशा की ओर गति से जुड़ी खगोलीय परिघटना है, जिसे प्रेक्षण द्वारा जाँचा जा सकता है। उसके साथ मृत्यु-पश्चात् गति का दावा मूलतः आध्यात्मिक है और विज्ञान की जाँच-सीमा से बाहर है। यह उदाहरण स्पष्ट करता है कि भारतीय काल-दर्शन में खगोलीय तथ्य और आध्यात्मिक अर्थ एक ही वाक्य में गुँथे मिलते हैं। आधुनिक विश्लेषक का कार्य उन्हें अलग करके पहचानना है, उनमें से किसी को भी अनुचित रूप से मिटाना नहीं।

7.5 गुणात्मक काल बनाम परिमाणात्मक काल

आधुनिक विज्ञान समय को समरूप, मापनीय परिमाण के रूप में लेता है; मुहूर्त-व्यवस्था में समय गुणात्मक है, जिसमें प्रत्येक खण्ड का 'स्वभाव' माना जाता है। यह अन्तर विरोधी नहीं, पूरक भी हो सकता है। समाजशास्त्र दिखाता है कि हर संस्कृति में समय केवल भौतिक नहीं, सामाजिक संगठन का साधन भी होता है, जहाँ कुछ समय 'पवित्र' और कुछ 'साधारण' ठहरते हैं [1]। इस दृष्टि से मुहूर्त-व्यवस्था एक सामाजिक-धार्मिक समय-व्यवस्था है, जो सामुदायिक कार्यों के लिए साझा समय-सूचक का काम करती है। पर्यावरणीय विमर्श में स्त्रियों की भूमिका जैसे सामाजिक अध्ययन भी यह संकेत देते हैं कि भारतीय समाज में प्रकृति-चक्र के साथ जीवन-व्यवहार जोड़ने की प्रवृत्ति व्यापक रही है [25]; यहाँ यह जोड़ लेखक की व्याख्या है, उस अध्ययन का सीधा निष्कर्ष नहीं।

8. वैज्ञानिक विश्लेषण: खगोलीय गणना, मौलिक आँकड़े और कालजैविक पाठ

8.1 तिथि की वास्तविक अवधि (RQ1)

लोकव्यवहार में तिथि को प्रायः 'एक दिन' जैसा माना जाता है। खगोलीय सच्चाई कुछ और है। वर्ष 2024 में आरम्भ होने वाली कुल 372 तिथियों की अवधि मैंने गणना से निकाली। न्यूनतम अवधि 20 घण्टे 12 मिनट और अधिकतम 26 घण्टे 46 मिनट आई; माध्य 23 घण्टे 39 मिनट और मानक विचलन लगभग 2.07 घण्टे रहा। सैद्धान्तिक माध्य (संयुति-मास को तीस से भाग देने पर) लगभग 23 घण्टे 37 मिनट है, इसलिए गणना-माध्य उसके अत्यन्त निकट है, जो एक आन्तरिक संगति-जाँच का काम करता है। शुक्ल पक्ष की तिथियों का माध्य 23 घण्टे 51 मिनट और कृष्ण पक्ष की तिथियों का 23 घण्टे 27 मिनट पाया गया। यह छोटा किन्तु स्पष्ट अन्तर पृथ्वी-सूर्य-चन्द्र ज्यामिति की असमान गतियों से आने वाली परिघटना के अनुरूप है।

तिथि-अवधि के घण्टेवार वितरण में 20 से 21 घण्टे वाले वर्ग में 45, 21 से 22 वाले में 65, 22 से 23 वाले में 51, 23 से 24 वाले में 44, 24 से 25 वाले में 43, 25 से 26 वाले में 50 तथा 26 घण्टे से अधिक वाले वर्ग में 74 तिथियाँ मिलीं। अर्थात् वितरण केन्द्र

की ओर घनीभूत नहीं, बल्कि सिरों की ओर भारी है। इसका अर्थ यह है कि 'औसत' तिथि वास्तविक तिथियों का विश्वसनीय प्रतिनिधि नहीं है।

इसका एक व्यावहारिक परिणाम तिथि-वृद्धि और तिथि-क्षय है। दिल्ली के सूर्योदयों के सापेक्ष इसी सारणी पर यह जाँच की गई कि कौन-सी तिथि किसी भी सूर्योदय को स्पर्श नहीं करती (क्षय) और कौन-सी दो सूर्योदयों को स्पर्श करती है (वृद्धि)। इस सरल नियम के अनुसार 2024 में 18 तिथियाँ क्षय और 12 तिथियाँ वृद्धि की स्थिति में आईं। इन दोनों का अन्तर 6 है, जो 372 तिथियों और 366 दिनों के अन्तर के ठीक बराबर है। यह मेल दर्शाता है कि गणना आन्तरिक रूप से संगत है, और यह भी कि पंचांग की तिथि-व्यवस्था एक सुव्यवस्थित गणितीय समायोजन है, केवल रूढ़ि नहीं। अतः परिकल्पना H1 पुष्ट होती है: पंचांग की मूल खगोलीय संरचना आधुनिक गणना से सत्यापित की जा सकती है [2,38,39]।

8.2 मुहूर्त की वास्तविक अवधि: अक्षांश और ऋतु का प्रभाव (RQ2)

अब प्रश्न यह है कि प्रचलित 48 मिनट का मान कितना स्थिर है। यदि दिवा-भाग को सचमुच पन्द्रह बराबर मुहूर्तों में बाँटा जाए (दिनमान ÷ 15), तो दिवा-मुहूर्त की अवधि दिनमान के साथ बदलेगी। सारणी 2 में ऋतु-चरम (20 जून और 21 दिसम्बर 2024) की गणना दी गई है। दिनमान सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच का समय है।

सारणी 2: 2024 में विभिन्न अक्षांशों पर दिनमान और दिवा-मुहूर्त (दिनमान ÷ 15) की अवधि

स्थान (अक्षांश)	20 जून: दिनमान	20 जून: दिवा-मुहूर्त (मि.)	21 दिसम्बर: दिनमान	21 दिसम्बर: दिवा-मुहूर्त (मि.)	अन्तर (मि.)
चेन्नई (13.08° उ.)	12:58	51.9	11:25	45.7	6.2
वाराणसी (25.32° उ.)	13:47	55.2	10:38	42.5	12.7
दिल्ली (28.61° उ.)	14:03	56.2	10:24	41.6	14.6
श्रीनगर (34.08° उ.)	14:31	58.0	9:58	39.8	18.2
ट्रोम्सो (69.65° उ.)	सूर्यास्त नहीं	अपरिभाषित	सूर्योदय नहीं	अपरिभाषित	—

टिप्पणी: दिनमान घण्टा:मिनट में; दिवा-मुहूर्त = दिनमान ÷ 15। विषुव (20 मार्च/22 सितम्बर) पर भारतीय स्थानों में मान 48.7–48.8 मिनट और ट्रोम्सो में लगभग 50 मिनट रहा। स्रोत: लेखक की गणना (2024), PyEphem आधारित।

इन आँकड़ों से कई निष्कर्ष निकलते हैं। पहला, विषुव (20 मार्च और 22 सितम्बर) के आसपास भारतीय स्थानों पर दिवा-मुहूर्त लगभग 48.7 से 48.8 मिनट है, अर्थात् 48 मिनट का मान उसी अवस्था का आदर्शकृत औसत है; वह वर्ष-भर पर लागू एक स्थिर भौतिक तथ्य नहीं है। दूसरा, दिल्ली में दिवा-मुहूर्त ग्रीष्म-अयनान्त पर लगभग 56.2 मिनट और शीत-अयनान्त पर लगभग 41.6 मिनट है; अर्थात् रूढ़ मान से +17 प्रतिशत से -13 प्रतिशत तक का विचलन। श्रीनगर में यह विचलन और बढ़कर लगभग +21 और -17 प्रतिशत हो जाता है। तीसरा, चेन्नई जैसे निम्न अक्षांश पर विचलन अपेक्षाकृत कम है, पर शून्य नहीं। चौथा, रात्रि-मुहूर्त विपरीत दिशा में बदलते हैं: दिल्ली में रात्रि-मुहूर्त जून में लगभग 39.8 और दिसम्बर में लगभग 54.5 मिनट हैं। इस प्रकार दिवा और रात्रि के मुहूर्त एक साथ बराबर रहना केवल विषुव पर सम्भव है। अतः H2 पुष्ट होती है।

यह परिणाम किसी शास्त्रीय त्रुटि का आरोप नहीं है; यह दो अलग परिपाटियों का भेद है। एक परिपाटी में अहोरात्र को चौबीस घण्टे मानकर तीस समान भाग किए जाते हैं (स्थिर 48 मिनट)। दूसरी परिपाटी में दिवा और रात्रि को पृथक् पन्द्रह-पन्द्रह भागों में बाँटा जाता है (मौसमी, अर्थात् असमान काल, जैसा रोमन और मिस्र की मौसमी घण्टा-पद्धतियों में भी मिलता है [69])। कौन-सी परिपाटी किस ग्रन्थ-परम्परा में किस प्रयोजन से अपनाई गई, यह पाठ-इतिहास का प्रश्न है, जिस पर इस अध्ययन में निर्णय देना अभीष्ट नहीं; इतना ही कहना पर्याप्त है कि दोनों के परिणाम सारणी 2 के अनुसार गणनात्मक रूप से भिन्न होते हैं।

8.3 अभिजित् मुहूर्त का परीक्षण

अभिजित् को दिन के मध्य का मुहूर्त माना जाता है। असमान-काल परिपाटी में आठवाँ मुहूर्त दिन के 7/15 से 8/15 भाग के बीच पड़ता है, जिसका मध्य-बिन्दु ठीक दिनमान का मध्य है, इसलिए वह स्वतः मध्याह्न-केन्द्रित रहता है। परन्तु स्थिर 48 मिनट की परिपाटी में आठवाँ मुहूर्त सूर्योदय के 5 घण्टे 36 मिनट बाद आरम्भ होकर 6 घण्टे 24 मिनट बाद समाप्त होता है, अर्थात् उसका केन्द्र सूर्योदय से ठीक 6 घण्टे पर रहता है। इस स्थिति में निम्न परिणाम मिलते हैं। दिल्ली में 20 जून को सूर्योदय लगभग 05:21 (भारतीय मानक समय) था और दिनमान लगभग 14 घण्टे 03 मिनट; दिन का मध्य सूर्योदय के लगभग 7 घण्टे 01 मिनट बाद, अर्थात् लगभग 12:22 पर पड़ा। स्थिर योजना का अभिजित् 10:57 से 11:45 तक चलता है और दिन के मध्य से लगभग 37 मिनट पहले समाप्त हो जाता है। असमान-काल योजना में वही मुहूर्त लगभग 11:54 से 12:50 तक चलता है और मध्य को घेरता है। 21 दिसम्बर को दिल्ली में सूर्योदय लगभग 07:07 और दिनमान लगभग 10 घण्टे 24 मिनट था; दिन का मध्य लगभग 12:19 पर था। स्थिर योजना में अभिजित् 12:43 से 13:31 तक बैठता है, अर्थात् दिन के मध्य के लगभग 24 मिनट बाद आरम्भ होता है; असमान-काल योजना में वह लगभग 11:58 से 12:40 तक चलकर मध्य को घेरे रखता है।

इस प्रकार यदि अभिजित् की मूल अवधारणा 'दिन के ठीक मध्य का दोषरहित मुहूर्त' है, तो वह धारणा असमान-काल (दिनमान ÷ 15) परिपाटी में ही सुसंगत रहती है; स्थिर 48 मिनट की परिपाटी में वह वर्ष के अधिकांश दिनों में मध्याह्न से खिसक जाती है। यह एक ऐसा तकनीकी बिन्दु है जिसे पंचांग-निर्माता और शोधकर्ता दोनों को स्पष्ट रूप से दर्ज करना चाहिए।

8.4 सीमा-स्थिति: उच्च अक्षांश

ट्रोम्सो (69.65° उ.) में 20 जून को सूर्य क्षितिज से नीचे नहीं जाता और 21 दिसम्बर को उदित नहीं होता; इसलिए इन तिथियों पर सूर्योदय-सूर्यास्त-आधारित दिनमान अपरिभाषित है और मुहूर्त-विभाजन किया ही नहीं जा सकता। 20 मार्च को वहाँ दिवा-मुहूर्त लगभग 50.1 मिनट आया। इसका अर्थ यह है कि सूर्योदय-आश्रित मुहूर्त-व्यवस्था उन अक्षांशों के लिए विकसित हुई है जहाँ प्रतिदिन सूर्योदय-सूर्यास्त घटित होते हैं, जैसे भारतीय उपमहाद्वीप में। प्रवासी भारतीयों द्वारा विश्व भर में पंचांग के उपयोग के सन्दर्भ में यह एक पद्धतिगत प्रश्न बन जाता है: ध्रुवीय या उप-ध्रुवीय स्थानों पर मुहूर्त कैसे परिभाषित हो? इसका कोई एक शास्त्रीय उत्तर उपलब्ध पाठ-स्रोतों में निर्णायक रूप से नहीं मिलता, और यह भावी शोध का विषय है।

8.5 कालजैविक विश्लेषण: ब्राह्म मुहूर्त और प्रकाश-सम्बद्ध जागरण

ब्राह्म मुहूर्त की परिभाषा सूर्योदय-सापेक्ष है (सूर्योदय से लगभग 96 मिनट पूर्व आरम्भ)। यह घड़ी-समय पर नहीं, प्रातःकालीन प्रकाश के आगमन पर निर्भर है। दिल्ली में इसका आरम्भ 20 जून को लगभग 03:45 और 21 दिसम्बर को लगभग 05:31 पर पड़ता है,

अर्थात् घड़ी के अनुसार लगभग 1 घण्टा 46 मिनट का अन्तर। यह मौसमी अन्तर अपने आप में अनुचित नहीं है, क्योंकि मानव की सर्केडियन घड़ी भी सूर्य-समय से समस्वर होती है और प्राकृतिक प्रकाश-अन्धकार चक्र उसके चरण को खिसकाता है [56,57]। मानव की अन्तर्निहित घड़ी का आवर्तकाल 24 घण्टे से कुछ अधिक पाया गया है, इसलिए प्रातःकालीन प्रकाश-संकेत घड़ी को प्रतिदिन आगे खींचने में सहायक है [55]। मस्तिष्क के सुप्राकायजैमेटिक नाभिक में केन्द्रीय घड़ी की तन्त्रिकीय संरचना और उसके प्रकाश से समायोजन की समीक्षाएँ भी यही चित्र पुष्ट करती हैं [70]। कालप्रकारता (क्रोनोटाइप) के अध्ययन बताते हैं कि प्रातःप्रिय और सन्ध्याप्रिय प्रवृत्तियाँ व्यक्तियों में स्वाभाविक रूप से भिन्न होती हैं [71,72]। इसलिए ब्राह्म मुहूर्त जागरण का वैज्ञानिक समर्थन सामूहिक औसत स्तर पर तो प्रासंगिक है, पर वह प्रत्येक व्यक्ति पर एकसमान लागू होने वाला सार्वभौमिक नुस्खा नहीं है। 'सामाजिक जेट-लैग' की धारणा यह भी दिखाती है कि जैविक घड़ी और सामाजिक समयसारणी का बेमेल स्वास्थ्य-जोखिम बढ़ाता है [58]; इस कसौटी पर किसी की निजी घड़ी के विरुद्ध थोपी गई जागरण-सारणी लाभ के बजाय हानि भी दे सकती है।

यहाँ विज्ञान की भाषा में एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। उपरोक्त साक्ष्य सूर्योदय-सापेक्ष समय-निर्धारण की जैविक सुसंगति को बल देते हैं; वे यह सिद्ध नहीं करते कि किसी विशेष 'अमृत', 'जीव' या 'ब्रह्म' नामक मुहूर्त में किए गए जप, ध्यान या अन्य कर्म का कोई अलौकिक फल मिलता है। उन्हें इस दावे तक खींचना साक्ष्य से आगे निकलना होगा।

8.6 परीक्षण-योग्य परिकल्पनाओं का प्रस्ताव (RQ4)

वैज्ञानिक साहित्य की इन सीमाओं के बीच मुहूर्त-विषयक शोध के लिए निम्नलिखित परीक्षण-योग्य शोध-अभिकल्प प्रस्तावित किए जा सकते हैं। (क) अपेक्षा-प्रभाव का प्रयोग: प्रतिभागियों को यादृच्छिक रूप से 'शुभ' अथवा 'तटस्थ' समय पर कार्य शुरू करने का विश्वास दिलाकर प्रदर्शन तथा चिन्ता को मापना, जो अनुष्ठान और शुभंकर के प्रयोगों की पद्धति का स्वाभाविक विस्तार है [65,66]। (ख) प्राकृतिक प्रयोग: जिन समुदायों में मुहूर्त-आश्रित आरम्भ प्रचलित है और जिनमें नहीं, उनमें परिणामों (जैसे व्यवसाय-जीविता, विवाह-स्थिरता) की पूर्व-पंजीकृत तुलना, जिसमें सामाजिक-आर्थिक भ्रामक कारकों का नियन्त्रण हो। (ग) कालजैविक अध्ययन: सूर्योदय-सापेक्ष जागरण बनाम घड़ी-निश्चित जागरण के निद्रा-गुणवत्ता और सतर्कता पर प्रभाव को प्रकाश-मापन के साथ जाँचना [56,57]। (घ) पाठ-आलोचनात्मक अध्ययन: मुहूर्त-नामावली और फल-निर्देश के पाठभेदों का विभिन्न पाण्डुलिपि-परम्पराओं से सारणीकरण [4,18]। इन अभिकल्पों की विशेषता यह है कि ये मुहूर्त के 'फल' की सत्यता को पूर्वनिर्णीत माने बिना उसके मापनीय प्रभावों की जाँच करते हैं।

9. तुलनात्मक विश्लेषण: अन्य सभ्यताओं की कालविभाजन-परम्पराएँ

काल को शुभाशुभ या गुणात्मक खण्डों में बाँटने की प्रवृत्ति केवल भारतीय नहीं है। इस खण्ड में तुलना चार स्तरों पर की गई है: विभाजन की इकाई, दिन-रात के विभाजन का नियम, शुभाशुभ का निर्धारण, और संस्थागत प्रयोग।

रोम-मिस्र की मौसमी घण्टा-पद्धति। प्राचीन भूमध्यसागरीय संसार में दिवा-भाग को सामान्यतः बारह बराबर 'मौसमी घण्टों' में बाँटा जाता था, जिससे गर्मियों में दिन का घण्टा लम्बा और सर्दियों में छोटा होता था; मध्ययुगीन यूरोप में समान घण्टों की मशीनी घड़ियों के विकास का इतिहास इस बदलाव की विस्तृत कथा कहता है [69]। प्राचीन खगोल के गणितीय इतिहास में भी ऐसी असमान-काल इकाइयाँ और उनके रूपान्तरण-नियम दर्ज हैं [73]। यह तुलना सारणी 2 के निष्कर्ष को सन्दर्भ देती है: दिवा के पन्द्रह भाग

करने वाली भारतीय असमान-काल परिपाटी अपनी तकनीकी प्रकृति में मौसमी घण्टे जैसी है, भेद केवल भाजक का है (बारह के स्थान पर पन्द्रह)।

हेलेनिस्टिक आरम्भ-ज्योतिष। यूनानी-रोमन ज्योतिष में किसी कार्य के आरम्भ के लिए अनुकूल क्षण चुनने की विधि पाई जाती है; ग्रह-होरा की प्रणाली में भी दिन-रात के बारह-बारह भाग ग्रहों से जुड़े थे [74,75]। भारतीय मुहूर्त-परम्परा से इसकी समानता मूल-प्रयोजन में है, यानी कार्य के आरम्भ का काल चुनना; भेद यह है कि भारतीय व्यवस्था में तिथि-नक्षत्र-योग-करण का बहुस्तरीय पंचांग-ढाँचा मुहूर्त-निर्णय में भाग लेता है, जबकि प्राचीन ग्रह-होरा-पद्धति अपेक्षाकृत ग्रह-केन्द्रित थी। पिंघी का इतिहास दिखाता है कि भारतीय और यूनानी-बेबिलोनी ज्योतिष के बीच विचार-विनिमय भी हुआ, अतः दोनों को पूर्णतः पृथक् मानना उचित नहीं [4]।

चीनी परम्परा। चीन में दिन को बारह 'शि' (दो-दो घण्टे के भाग) में बाँटने तथा सहायक रूप में सौ 'के' की प्रणालियों का प्रयोग रहा, और खगोल-कैलेण्डर राज्य-संस्थान से जुड़ा था [76]। यहाँ भी शुभ दिन और शुभ घड़ी चुनने की लोक-परम्परा प्रचलित रही। भारतीय पद्धति से अन्तर यह है कि चीनी बारह-भाग-विभाजन समान काल पर आधारित रहा, जबकि भारतीय पन्द्रह-भाग-विभाजन की असमान-काल परिपाटी ऋतु-सापेक्ष बदलती है।

आधुनिक सेकण्ड-आधारित एकरूप समय। आधुनिक व्यवस्था समय को पूर्णतः समरूप इकाइयों में बाँटती है। इसकी शक्ति मापन-शुद्धता और वैश्विक समन्वय है; इसकी कीमत यह है कि प्राकृतिक प्रकाश-चक्र से सीधा सम्बन्ध ढीला हो जाता है। कालजैविकी बताती है कि इस ढीलेपन के स्वास्थ्य-परिणाम हो सकते हैं [58,60]। तुलना का सार इस प्रकार है: भारतीय असमान-काल परिपाटी प्राकृतिक प्रकाश से जुड़ाव की दृष्टि से लाभदायक है, पर वैश्विक समन्वय की दृष्टि से जटिल; स्थिर 48 मिनट की परिपाटी समन्वय के लिए सुविधाजनक है, पर भौतिक यथार्थ का औसतीकरण है।

यह भी ध्यातव्य है कि अन्य संस्कृतियों में भी शुभ-काल के चयन की प्रवृत्ति के लिए कोई अधिक प्रबल प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिलता। इस अर्थ में भारतीय मुहूर्त-परम्परा कोई अपवाद नहीं है; वह मानव-संस्कृति में निहित 'काल को अर्थ देने' की सार्वभौमिक प्रवृत्ति की एक विशिष्ट, अत्यन्त विकसित अभिव्यक्ति है।

10. आलोचनात्मक संश्लेषण: यथार्थ का उद्घाटन और उद्धरण-योग्य प्रस्थापनाएँ

उपर्युक्त विश्लेषणों को मिलाकर जो यथार्थ-चित्र उभरता है, उसे सूत्रबद्ध प्रस्थापनाओं के रूप में रखा जा रहा है, ताकि परवर्ती अध्येता उन्हें स्पष्ट रूप से उद्धृत और परीक्षित कर सकें।

प्रस्थापना 1 (स्तर-भेद का सिद्धान्त)। 'पंचांग' और 'मुहूर्त-फल' भिन्न ज्ञानमीमांसीय स्तर के दावे हैं। पंचांग प्रेक्षणीय खगोलीय राशियों का गणितीय अभिलेख है, जबकि मुहूर्त-फल मानवीय परिणामों के बारे में कारणात्मक अनुमान है। दोनों के लिए साक्ष्य की कसौटी भिन्न होनी चाहिए।

प्रस्थापना 2 (औसतीकरण का सिद्धान्त)। 48 मिनट का मुहूर्त एक विषुवीय आदर्श-औसत है। वास्तविक दिवा-मुहूर्त भारतीय अक्षांशों पर वर्ष-भर में लगभग 40 से 58 मिनट के बीच बदलता है (सारणी 2)।

प्रस्थापना 3 (अक्षांश-बद्धता का सिद्धान्त)। सूर्योदय-आश्रित मुहूर्त-व्यवस्था उन अक्षांशों तक सीमित है जहाँ नित्य सूर्योदय-सूर्यास्त होते हैं; ध्रुवीय सीमाओं के निकट उसे पुनर्परिभाषित करना पड़ेगा।

प्रस्थापना 4 (अनुपस्थित-साक्ष्य का सिद्धान्त)। मुहूर्त के विशिष्ट फल-दावों के लिए प्रत्यक्ष, नियन्त्रित प्रायोगिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है; पर यह निर्णायक खण्डन भी नहीं है, क्योंकि समर्पित परीक्षण ही अत्यल्प हुए हैं। जन्मकुण्डली-आधारित परीक्षणों के परिणाम [46,47] इस प्रश्न पर सीधे लागू नहीं होते, यद्यपि वे ज्योतिष-दावों पर सामान्य सन्देह को पुष्ट करते हैं।

प्रस्थापना 5 (अप्रत्यक्ष-प्रभाव का सिद्धान्त)। मुहूर्त-पालन के जो भी मापनीय लाभ दिखते हैं, वे अधिक सम्भावना से अनुष्ठानजन्य मनोवैज्ञानिक प्रभावों, कर्म-आरम्भ के अनुशासन और सामाजिक समन्वय से उत्पन्न होते हैं [1,66,67], आकाशीय कारण से नहीं।

प्रस्थापना 6 (स्वास्थ्य-चर्या का सिद्धान्त)। ब्राह्म मुहूर्त जैसे जो निर्देश स्वास्थ्य-चर्या के रूप में कहे गए हैं [19], उनके पीछे सूर्य-समय और सर्कैडियन जैविकी का वास्तविक आधार है [55-57]; परन्तु उनकी सार्वभौमिकता व्यक्तिगत कालप्रकार से सीमित है [71]।

इन प्रस्थापनाओं का सम्मिलित अर्थ यह है कि न तो 'सब कुछ शास्त्र-सिद्ध है' वाला मत उचित है और न 'सब कुछ अन्धविश्वास है' वाला। एक तीसरा मार्ग है, जिसमें प्रत्येक दावे को उसकी अपनी कसौटी पर परखा जाए। यह मार्ग भारतीय शास्त्रार्थ-परम्परा के सर्वथा अनुकूल है, जिसमें प्रमाण की परीक्षा को ही ज्ञान का आधार माना गया।

11. सीमाएँ एवं भावी शोध

इस अध्ययन की कई सीमाएँ हैं। (1) धारा ख (उद्देश्यपूर्ण चयन) व्यापक डेटाबेस-खोज नहीं है, इसलिए चयन-पक्षपात की सम्भावना है। (2) कालसीमा (2024 या पूर्व) के कारण प्रदत्त सन्दर्भ-संग्रह के 97 अभिलेख बाहर रहे; उनमें से कुछ विषय-प्रासंगिक हो सकते हैं और भावी संस्करण में जोड़े जा सकते हैं। (3) सारणी 1 की मुहूर्त-सूची एक प्रचलित परम्परा पर आधारित है; पाण्डुलिपि-स्तर पर पाठभेद सम्भव हैं। (4) खगोलीय आँकड़े पाँच स्थानों और विशिष्ट तिथियों तक सीमित हैं, और गणना की त्रुटि-सीमा कुछ मिनट की हो सकती है। (5) तिथि-क्षय/वृद्धि की गणना एक सरल नियम पर आधारित है; विभिन्न पंचांग-परम्पराएँ भिन्न नियम अपनाती हैं। (6) सन्दर्भ-संग्रह के कुछ हिन्दी अध्ययनों का उपयोग उनके विषय-क्षेत्र के आधार पर सामान्य सन्दर्भ के रूप में हुआ है; उनके पूर्ण पाठ में मुहूर्त पर सीधी सामग्री नहीं होने की सम्भावना है।

भावी शोध के लिए चार दिशाएँ सुझाई जाती हैं: पाण्डुलिपि-आधारित मुहूर्त-नामावली का तुलनात्मक संस्करण; पूरे वर्ष तथा अधिक स्थानों के लिए मुहूर्त-अवधि का अटलस; ऊपर प्रस्तावित अपेक्षा-प्रभाव और कालजैविक प्रयोग; तथा ध्रुवीय अक्षांशों के लिए मुहूर्त की पुनर्परिभाषा।

12. निष्कर्ष

यह शोध-पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वैदिक पंचांग और मुहूर्त शास्त्र को एकाकार इकाई मानकर स्वीकारना या अस्वीकारना दोनों ही अनुचित हैं। पंचांग का खगोलीय-गणितीय ढाँचा सत्यापनीय है: वर्ष 2024 में 372 तिथियाँ 20 घण्टे 12 मिनट से 26 घण्टे 46 मिनट के बीच फैली मिलीं, और दिल्ली में तिथि-क्षय एवं वृद्धि का अन्तर 6 ठीक वर्ष के तिथि-दिन अन्तर से मेल खाता है।

मुहूर्त की लोकप्रिय 48 मिनट की अवधि वास्तव में विषुवीय औसत है; दिल्ली में दिवा-मुहूर्त वर्ष-भर में लगभग 41.6 से 56.2 मिनट तक बदलता है, और अभिजित् जैसे मध्याह्न-केन्द्रित मुहूर्त की संगति असमान-काल परिपाटी में ही बनी रहती है। मुहूर्त के शुभाशुभ फलों के लिए नियन्त्रित वैज्ञानिक प्रमाण अनुपस्थित हैं, परन्तु इस अनुपस्थिति को खण्डन के बराबर मानना भी अनुचित होगा। मनोवैज्ञानिक अनुष्ठान-प्रभाव, कार्यारम्भ का अनुशासन और सूर्य-सापेक्ष कालजैविक सामंजस्य ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ परीक्षण-योग्य, मापनीय प्रश्न उभरते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से, गीता का 'दैव' को पाँचवाँ कारण मानने वाला सन्तुलन मुहूर्त-विचार का सबसे स्वस्थ आधार प्रस्तुत करता है: कर्म प्रधान रहे, काल-चेतना सहायक। इस प्रकार एक अनुशासित, साक्ष्य-सचेत और सांस्कृतिक रूप से सम्मानजनक दृष्टिकोण यही होगा कि पंचांग को खगोलीय ज्ञान-परम्परा के रूप में, मुहूर्त को सांस्कृतिक-अनुष्ठानिक संस्था के रूप में, और उसके फल-दावों को परीक्षण-योग्य परिकल्पनाओं के रूप में देखा जाए।

सन्दर्भ

1. Zerubavel E. Hidden rhythms: schedules and calendars in social life. Chicago: University of Chicago Press; 1981.
2. Reingold EM, Dershowitz N. Calendrical calculations: the ultimate edition. Cambridge: Cambridge University Press; 2018.
3. Lagadha. Vedāṅga Jyotiṣa of Lagadha (Yajuṣa Jyotiṣa). Kuppanna Sastry TS, Sarma KV, editors. New Delhi: Indian National Science Academy; 1985.
4. Pingree D. Jyotiḥśāstra: astral and mathematical literature. Wiesbaden: Otto Harrassowitz; 1981. (A history of Indian literature; vol 6, fasc 4).
5. Subbarayappa BV, Sarma KV, editors. Indian astronomy: a source book. Bombay: Nehru Centre; 1985.
6. Ahluwalia PS. भाषा, संस्कार और संस्कृति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. शब्दसागर. 2023;35-41.
7. Ahluwalia PS. संस्कार और संस्कृति: समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन. शब्दसागर. 2023;17-25.
8. Ahluwalia PS. भाषा और संस्कृति के विकास में संस्कारों का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. शब्दसागर. 2024;1-8.
9. Bok BJ, Jerome LE, Kurtz P. Objections to astrology: a statement by 186 leading scientists. The Humanist. 1975;35(5):4-6.
10. Thagard PR. Why astrology is a pseudoscience. PSA Proc Bienn Meet Philos Sci Assoc. 1978;1978(1):223-34.
11. Page MJ, McKenzie JE, Bossuyt PM, Boutron I, Hoffmann TC, Mulrow CD, et al. The PRISMA 2020 statement: an updated guideline for reporting systematic reviews. BMJ. 2021;372:n71.

12. Tricco AC, Lillie E, Zarin W, O'Brien KK, Colquhoun H, Levac D, et al. PRISMA extension for scoping reviews (PRISMA-ScR): checklist and explanation. *Ann Intern Med.* 2018;169(7):467-73.
13. Jamison SW, Brereton JP, translators. *The Rigveda: the earliest religious poetry of India.* 3 vols. New York: Oxford University Press; 2014.
14. Whitney WD, translator. *Atharva-Veda Samhita.* Lanman CR, editor. Harvard Oriental Series, vols 7–8. Cambridge (MA): Harvard University; 1905.
15. Burgess E, translator. *Translation of the Sūrya-Siddhānta, a text-book of Hindu astronomy.* *J Am Orient Soc.* 1860;6:141-498.
16. Bhat MR, translator. *Varāhamihira's Br̥hat Saṃhitā.* Delhi: Motilal Banarsidass; 1981.
17. Thibaut G, Dvivedi S, editors and translators. *The Pañcasiddhāntikā of Varāha Mihira.* Benares: E. J. Lazarus; 1889.
18. Daivajña Rāma. *Muhūrtacintāmaṇi [Sanskrit text with the Pīyūṣadhārā commentary].* Composed c. 1600 CE. Varanasi: Chaukhambha; various editions.
19. Murthy KRS, translator. *Vāgbhaṭa's Aṣṭāṅga Hr̥dayam. Vol 1: Sūtrasthāna.* Varanasi: Krishnadas Academy; 1991.
20. Radhakrishnan S. *The Bhagavadgītā.* London: George Allen & Unwin; 1948.
21. Ahluwalia PS. Ethical issues in social science research. *Shodh Patra: Int J Multidiscip Stud.* 2024;1-8.
22. Ahluwalia PS. Plagiarism: detection techniques and tools. *Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit.* 2024;1-11.
23. Ahluwalia PS. गांधी जी के जीवन मूल्य और वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता. *शब्दसागर.* 2024;6-17.
24. Ahluwalia PS. गांधी जी की शिक्षा नीति: नैतिकता और जीवन कौशल के विशेष संदर्भ में. *शब्दसागर.* 2024;9-16.
25. Ahluwalia PS. वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान. *Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit.* 2024;107-23.
26. Ahluwalia PS. NAAC reforms and Indian education system: an empirical study on implementation challenges and opportunities. *Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit.* 2024;84-108.
27. Ahluwalia PS. NAAC's quality indicators and Indian higher education: a comparative analysis of best practices and challenges. *Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit.* 2024;38-66.
28. Ahluwalia PS. Strategic implications of NAAC's outcome-based education approach on Indian higher education: a case study. *Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit.* 2024;95-123.

29. Ahluwalia PS. Enhancing quality assurance in Indian higher education: a critical analysis of NAAC's role and impact. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:193-210.
30. Ahluwalia PS. Assessing the effectiveness of NAAC accreditation in improving academic excellence in Indian higher education institutions. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:146-59.
31. Ahluwalia PS. Strategic planning for NAAC accreditation: a roadmap for Indian higher education institutions to achieve excellence. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023:44-69.
32. Ahluwalia PS. NAAC's role in promoting research and innovation: a comparative analysis of Indian universities. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023:47-70.
33. Ahluwalia PS. Improving student learning outcomes through NAAC's assessment and accreditation process: a case study of Indian colleges. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023:25-40.
34. Ahluwalia PS. भारत-चीन संबंध: अवसर और चुनौतियाँ. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023:12-21.
35. Ahluwalia PS. Improving patient safety: strategies for reducing hospital-acquired infections. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:126-45.
36. Seidelmann PK, editor. Explanatory supplement to the Astronomical Almanac. Mill Valley (CA): University Science Books; 1992.
37. Rhodes BC. PyEphem: astronomical ephemeris for Python [software]. 2011.
38. Meeus J. Astronomical algorithms. 2nd ed. Richmond (VA): Willmann-Bell; 1998.
39. Chatterjee SK. Indian calendric system. New Delhi: Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting; 1998.
40. Sewell R, Dikshit SB. The Indian calendar. London: Swan Sonnenschein; 1896.
41. Plofker K. Mathematics in India. Princeton (NJ): Princeton University Press; 2009.
42. Balachandra Rao S. Indian astronomy: an introduction. Hyderabad: Universities Press; 2000.
43. Calendar Reform Committee. Report of the Calendar Reform Committee. New Delhi: Council of Scientific and Industrial Research; 1955.
44. Kane PV. History of Dharmaśāstra. Vol 5, part 1. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1958.
45. Sen SN, Shukla KS, editors. History of astronomy in India. 2nd ed. New Delhi: Indian National Science Academy; 2000.
46. Carlson S. A double-blind test of astrology. Nature. 1985;318(6045):419-25.

47. Dean G, Kelly IW. Is astrology relevant to consciousness and psi? J Conscious Stud. 2003;10(6-7):175-98.
48. Popper KR. Conjectures and refutations: the growth of scientific knowledge. London: Routledge & Kegan Paul; 1963.
49. Rotton J, Kelly IW. Much ado about the full moon: a meta-analysis of lunar-lunacy research. Psychol Bull. 1985;97(2):286-306.
50. Kelly IW, Rotton J, Culver R. The moon was full and nothing happened: a review of studies on the moon and human behavior and human belief. Skeptical Inquirer. 1986;10(2):129-43.
51. Cajochen C, Altanay-Ekici S, Münch M, Frey S, Knoblauch V, Wirz-Justice A. Evidence that the lunar cycle influences human sleep. Curr Biol. 2013;23(15):1485-8.
52. Cordi M, Schlarb AA, Rasch B. Lunar cycle effects on sleep and the file drawer problem. Curr Biol. 2014;24(12):R549-50.
53. Foster RG, Roenneberg T. Human responses to the geophysical daily, annual and lunar cycles. Curr Biol. 2008;18(17):R784-94.
54. Naylor E. Chronobiology of marine organisms. Cambridge: Cambridge University Press; 2010.
55. Czeisler CA, Duffy JF, Shanahan TL, Brown EN, Mitchell JF, Rimmer DW, et al. Stability, precision, and near-24-hour period of the human circadian pacemaker. Science. 1999;284(5423):2177-81.
56. Roenneberg T, Kumar CJ, Merrow M. The human circadian clock entrains to sun time. Curr Biol. 2007;17(2):R44-5.
57. Wright KP Jr, McHill AW, Birks BR, Griffin BR, Rusterholz T, Chinoy ED. Entrainment of the human circadian clock to the natural light-dark cycle. Curr Biol. 2013;23(16):1554-8.
58. Wittmann M, Dinich J, Merrow M, Roenneberg T. Social jetlag: misalignment of biological and social time. Chronobiol Int. 2006;23(1-2):497-509.
59. Panda S. Circadian physiology of metabolism. Science. 2016;354(6315):1008-15.
60. Foster RG. Sleep, circadian rhythms and health. Interface Focus. 2020;10(3):20190098.
61. Langer EJ. The illusion of control. J Pers Soc Psychol. 1975;32(2):311-28.
62. Forer BR. The fallacy of personal validation: a classroom demonstration of gullibility. J Abnorm Soc Psychol. 1949;44(1):118-23.
63. Skinner BF. 'Superstition' in the pigeon. J Exp Psychol. 1948;38(2):168-72.
64. Vyse SA. Believing in magic: the psychology of superstition. New York: Oxford University Press; 1997.

65. Damisch L, Stoberock B, Mussweiler T. Keep your fingers crossed! How superstition improves performance. *Psychol Sci.* 2010;21(7):1014-20.
66. Brooks AW, Schroeder J, Risen JL, Gino F, Galinsky AD, Norton MI, et al. Don't stop believing: rituals improve performance by decreasing anxiety. *Organ Behav Hum Decis Process.* 2016;137:71-85.
67. Norton MI, Gino F. Rituals alleviate grieving for loved ones, lovers, and lotteries. *J Exp Psychol Gen.* 2014;143(1):266-72.
68. Basham AL. History and doctrines of the Ājīvikas: a vanished Indian religion. London: Luzac; 1951.
69. Dohrn-van Rossum G. History of the hour: clocks and modern temporal orders. Dunlap T, translator. Chicago: University of Chicago Press; 1996.
70. Hastings MH, Maywood ES, Brancaccio M. Generation of circadian rhythms in the suprachiasmatic nucleus. *Nat Rev Neurosci.* 2018;19(8):453-69.
71. Adan A, Archer SN, Hidalgo MP, Di Milia L, Natale V, Randler C. Circadian typology: a comprehensive review. *Chronobiol Int.* 2012;29(9):1153-75.
72. Roenneberg T. Internal time: chronotypes, social jet lag, and why you're so tired. Cambridge (MA): Harvard University Press; 2012.
73. Neugebauer O. The exact sciences in antiquity. 2nd ed. Providence (RI): Brown University Press; 1957.
74. Brennan C. Hellenistic astrology: the study of fate and fortune. Denver (CO): Amor Fati Publications; 2017.
75. Kelley DH, Milone EF. Exploring ancient skies: a survey of ancient and cultural astronomy. 2nd ed. New York: Springer; 2011.
76. Needham J. Science and civilisation in China. Vol 3: Mathematics and the sciences of the heavens and the earth. Cambridge: Cambridge University Press; 1959.